International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 4; July 2017; Page No. 48-50

अथर्ववेद में मानव के राजनीतिक अधिकार

प्रेम सिंह

शोधार्थी (पी.एच.डी.), संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत।

प्रस्तावना

वैदिक सभ्याता और संस्कृति को जानने के लिए अथर्ववेद चारों वेदों में (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में विशेष उपयोगी है। ऋग्वेदादि की परम्परा में प्राचीन शास्त्रों में अथर्ववेद को चतुर्थ स्थान पर स्थापित किया गया है[1], परन्तु न्यायमंजरीकार ने अथर्ववेद को प्रथम स्थान पर स्थापित किया है।[2] आचार्य सायण ने सर्वार्थ की सिद्धि के लिए अथर्ववेद के महत्व को स्वीकार किया है।[3] श्रीमद्भागवत महापुराण में अथर्ववेद को शान्ति प्रदान करने वाला वेद कहा है।[4]

आधुनिक युग में संसार के सभी देशों में लोकतन्त्रात्मक अथवा जनतन्त्रात्मक शासन व्यावस्था स्थापित है। लोकतन्त्र का अर्थ होता है– लोक या जनता का, जनता के लिए, जनता के द्वारा शासन। लोकतन्त्र शब्द से यह ज्ञात हो जाता है कि लोक या देश का शासन जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि द्वारा सुव्यावस्थित रूप से चलाया जाना। देश की जनता द्वारा चुने गए प्रतिनिधि देश की जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। भारत का संविधान ब्रिटिश शासन से अभिप्रेरित है, किन्तु यह शासन एवं राज्य–व्यवस्था नवीन नहीं है। भारत में यह शासन तन्त्र उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव समाज एवं राज्य–व्यावस्था। जब संसार के लोग शासन एवं राज्यादि शब्दों से परिचित भी नहीं थे तब भारत में राजादि के चुनाव का शासन तन्त्र विद्यमान था। शासन व्यवस्था वैदिक काल से ही अनवरत रूप से प्रवाहमान होकर वर्तमान में प्राप्त हुई है, जिसमें कि राज्यव्यवस्था के सन्दर्भ में राष्ट्र, क्षत्र, विश, विश्पति, संसद, राजत्व, सभा, समिति आदि शब्दावली का प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में राज्य के अंग, राजा के लक्षण, राजा के कर्त्तव्य, प्रजा के कर्त्तव्य, प्रजा के अधिकार आदि अनेक पहलुओं पर राजनीतिक जीवन के सन्दर्भ में वर्णन प्राप्त होते हैं।

(क) राजा के निर्वाचन का अधिकार

वर्तमान भारत की राजनीति स्थिति पतनोन्मुख होती जा रही है। परन्तु सत्ता परिवर्तन जितने लोकतान्त्रिक एवं शान्त पद्धति से यहाँ हो जाता है वह पूरे विश्व के लिए आश्चर्य का विषय है। जनता में निहित इस राजनीतिक चेतना एवं शासकों का जनता के प्रति उत्तरदायी होने का श्रेय अथर्ववेद को है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका में कहा गया है कि सभी लोगों को आत्म निर्णय लेने का अधिकार है। इस अधिकार के परिणामस्वरूप वे स्तम्भ रूप से अपनी राजनीतिक प्रस्थिति का निर्धारण करेंगे तथा अपने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास की प्राप्ति के लिए प्रयास करेंगे।[5] अमेरिका के सबसे प्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र के विषय में कहा है कि प्रजातन्त्र लोगों की, लोगों के द्वारा और लोगों के लिए बनायी गयी सरकार है। वैदिक काल में राजतन्त्र, प्रजातन्त्र से ही पूर्ण होता था और इस समय में बड़े–बड़े राज्य नहीं थे, अपितु आर्य अनेकों जनों (कबीलों) में बँटे हुए थे। अथर्ववैदिक काल में आर्यों के पाँच प्रमुख जनों का उल्लेख मिलता है, इनके नाम हैं– अनु, द्रह्यु, यदु, तुर्वसु और पुरु। इस काल में प्रजा को राजा के निर्वाचन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था और यह निर्वाचन गुणों एवं वीरता के आधार पर होता था।[6] आचार्य मनु ने मनुस्मृति के 7/3 में राजा के चुनाव को इसलिए आवश्यक माना है क्योंकि राजा के अभाव में सर्वत्र अराजकता और भय की स्थिति हो जाती है। लोक की रक्षा के लिए राजा का सृजन हुआ।[6]

प्रजा के राजनीतिक अधिकारों को प्रजा की ही इन उक्तियों से समझा जा सकता है– वयम् राजसु प्रथमा[7], वयम् जयेम त्वया युजा[8], तन्मनुष्येभ्यो देवान् उपैति[9], महते जानराज्याय[10], विशि राष्ट्रे जागृहि[11], विशस्त्वा सर्वा वांछतु[12], त्वां विशो वृणतां राज्याय[13] आदि। अथर्ववैदिक काल में ग्राम सभा और राष्ट्र सभा ये दोनों ही राजा के द्वारा पुत्रीवत् पालन के योग्य थी। ये दोनों एकमत होकर ही राजा की रक्षा करतीं थीं। ये सभा और समिति दोनों ही आज के मन्त्रिमण्डल की भाँति केवल प्रधानमन्त्री के कार्यों का ही अनुमोदन नहीं करतीं थीं, अपितु राजा के कार्यों के अनुमोदनार्थ पूर्णतः स्वतन्त्र थीं।[14] प्रजा राजा के ध्रुव शासन के लिए समिति का निर्माण करती थी [15] और राजा के चयन में अपना मत भी देती थी।[16] अथर्ववेद के भाष्य में प्रो0 ग्रिफिथ ने भी कहा है कि प्राचीन समय में प्रजा राजा का निर्वाचन करती थी।[17] प्रजा राजा को राष्ट्र के प्रति भ्रष्ट नहीं होने की भी कामना करती थी।[18] जिस प्रकार प्रजा राजा से विश्वास पाने के लिए इच्छित थी उसी प्रकार राजा भी प्रजा का विश्वास पाने के लिए सदैव इच्छुक रहता था।[19] प्रजा का सुख ही राजा का सुख होता था।[20] अथर्ववेद में राजा को अपदस्थ करने का अधिकार प्रजा को था।[21] आचार्य मनु ने भी कहा है कि जो राजा प्रजा को कष्ट देता है वह कुपोषण से ग्रस्त प्राणियों के समान स्वयं नष्ट हो जाता है।[22] राजा के विधिवत् निर्वाचन के पश्चात् उसका राज्याभिषेक किया जाता था। अनभिषिक्त राजा निन्दिनीय और अवैध समझा जाता था।[23] शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि निर्वाचित राजा का ही राज्याभिषेक होता था, अन्य किसी का नहीं। अन्य जनों को अभिषेचनीय कहा गया है।[24] अभिषिक्त राजा देवों में भी श्रेष्ठ हो जाता था।[25] राजा का निर्वाचन हाने के बाद एक बृहद् यज्ञिय समारोह किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि राजसूय यज्ञ का फल राजत्व प्राप्ति है और वाजपेय यज्ञ का फल साम्राज्य की प्राप्ति है।[26] अथर्ववेद में राजसूय यज्ञ के विषय में कहा गया है कि जो राजा स्वयं सामर्थ्यवान् होकर अन्य सामर्थ्य वाले लोगों पर भी अपना वीर्य और पराक्रम स्थापित करता है वह समस्त प्राणियों का अधिपति होता है। वह राजसूय यज्ञ के द्वारा शासन स्थापित करता है। वह सभी प्रजा जनों के मन का अनुरंजक होता है।[27]

(ख) राजा को पदच्युत करने का अधिकार

राजा की नियुक्ति सानुबन्ध होती थी। उसे राज्य के सभी अधिकारियों से किसी कार्य के करने में सहमति लेनी अनिवार्य थी। यदि राजा अनुबन्धों और अधिकारियों के मतानुसार नहीं चलता था तो सभा और समिति उसे पदच्युत कर देती थीं। इसलिए ही सभा और समिति को पुत्रीवत् पालन के योग्य बताया गया है।[28] अथर्ववेद के ब्रह्मगवी सूक्त में ऐसे कुछ कार्यों का निर्देश है जिनके आधार पर

राजा को पदच्युत कर दिया जाता था।[29] राजा के असमर्थ और अयोग्य होने पर समिति उसे पदच्युत कर देती थी।[30] राजा यदि अपने दोषों को स्वीकार कर ले तो प्रजा उसे पुनः पदस्थ कर देती थी और राजा प्रायश्चित के रूप में सौत्रामणी यज्ञ का सम्पादन करता था।[31] पुनः स्थापित राजा को प्रजा आशीर्वाद स्वरूप कल्याण की कामना करती थी।[32]

(ग) राज्य से सहायता प्राप्त करने का अधिकार

भारतीय संस्कृति में राजा का प्रथम गुण प्रजा कल्याण माना गया है। यही कारण है कि भारत के राजा विश्व प्रसिद्ध हो सके। इस गुण को राजा के मुख्य अलंकार स्वरूप स्थापित करने का श्रेय वेदों को है। परन्तु उच्चतम अवस्था तक पहुँचाने का श्रेय अथर्ववेद को है। अथर्ववेद में प्रजा को राजा से पूर्ण सहायता प्राप्त करने का अधिकार था।[33] अथर्ववेद में कर मुक्ति के विषय में भी कहा गया है।[34] प्रजा राजा से धन के साथ–साथ घोडा, गाय आदि की भी याचना करती थी।[35]

(घ) राजा से सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार

अथर्ववेद के द्वारा स्थापित प्रजापालक राजा का मापदण्ड ही परवर्तिकाल में भी वर्तमान बना रहा। राजा को परमात्मा का अंश माना जाता था या इन शब्दों में कह सकते हैं कि प्रजा की रक्षा के लिए परमात्मा स्वयं ही मानव रूप में वसुन्धरा पर अवतरित होता थे।[36] अथर्ववैदिक काल में प्रजा पिता के द्वारा पुत्र के समान सुरक्षित थी।[37] प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य था। राजा दिन–रात बिना विश्राम किये प्रजा की रक्षा करता था। राजा के रहते प्रजा रात्रि में सुखपूर्वक सोती थी।[38] राष्ट्र की रक्षा के लिए रक्षक भी नियुक्त किये जाते थे।[39] प्रजा विजय की कामना करती हुई राष्ट्र की सुरक्षा के लिए युद्ध में राजा के साथ भी जाती थी।[40] विकट स्थिति में प्रजा राजा का ही आहवान करती थी।[41] युद्ध में शत्रु राजा से प्राप्त धन को विजयी राजा प्रजा के हित में और भरण–पोषण में लगाता था।[42] राजा को भय मुक्त करता हुआ कहता था कि सखायो मा रिषण्यत[43] अर्थात् हे मित्रो ! मत घबराओ। इस प्रकार राजा प्रजा के लिए और प्रजा राजा के लिए पूर्ण समर्पित थे।[44]

उपसंहार

प्रजा के जीवन को निष्कण्टक बनाना ही राजा का प्रथम कर्त्तव्य था। जब राजा राजत्व की उपाधि से सशोभित हो जाता था तो देवगण भी राजा के कार्यों के प्रति समर्पित हो जाते थे [45] और मनुष्य के कर्त्तव्य राजा के रूप में स्वयं ही निर्धारित हो जाते थे।[46] ग्रीक के दार्शनिकों ने प्रजातन्त्र को निकृष्टतम शासन प्रणाली माना है।[47] भारत की वर्तमान तो क्या प्राचीन अथर्ववैदिक काल की जनता ने भी उनके मत को स्वीकार नहीं किया था। ग्रीक का इतिहास कुछ ही वर्ष प्राचीन हो सकता है परन्तु भारत का इतिहास लाखों वर्ष पुराना है। अथर्ववैदिक काल में राजा के शासन की डोर प्रजा के हाथों में थी। राजा के कर्त्तव्यच्युत हो जाने पर प्रजा तत्काल ही उसे पदच्युत कर देती थी। राजा का वर्चस्व तभी तक था जब तक कि उसे प्रजा का सहयोग और समर्थन प्राप्त था।[48] प्रजा के अधिकारों के रक्षक उस शासक से बढ़कर कौन हो सकता है जो सूर्य के समान उद्दीप्त होकर और चन्द्रमा के समान शीतल होकर प्रत्येक करणीय काल में प्रजा की रक्षा करता था।[49] निष्कर्षतः कह सकते हैं कि राजा प्रजा के कल्याण के लिए चातुर्कालिक प्रार्थना करता था।[50]

सन्दर्भ सूची

1. (क) ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थकम्। छान्दो.उप. 7/12।
   (ख) ऋग्वेदो यजुर्वेदं सामवेदोऽथर्ववेदः। मुण्ड.उप. 1/1/5।
   (ग) तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
   छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्मादजायत।। ऋग्. 10/90/9।, यजु. 31/7।
   (घ) यस्मादृचो अपाचक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
   समानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्रिसो मुखम्।। अथर्व. 10/7/20।
   (ङ.) ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति। गोपथ. 1/2/16।
   (च) ऋचः सामनि यजुर्महीं। अथर्व. 10/7/14।
2. तत्र वेदाश्चत्वारः, प्रथमोऽथर्ववेदः। न्यायमंजरी पृ. 237–238।(चौखम्भा सं.)
3. न तिथिर्न च नक्षत्रं न ग्रहो न च चन्द्रमा।
   अथर्वमन्त्र सम्प्राप्त्या सर्वसिद्धिर्भविष्यति।। अथर्व.भा.भू. पृ.122, सायण।
4. अथर्वणेऽदात् शान्ति यया यज्ञो वितन्यते। श्रीमद्भा.पु. 3/24/24।
5. इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, वाल्यूम 20 पृ. 191।
6. (क) विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं, सजूंस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसो। अथर्व. 2/54/1।
   (ख) य उग्रः निष्टटतः स्थिरो रणाय संस्कृतः। अथर्व. 20/53/1।
   (ग) अयं गुणानां षट्त्रिंशत् षट्त्रिंशद्गुणसंयुतः।
   यान् गुणांस्तु गुणोपेतः कुर्वन गुणमवाप्नुयात्।। महा.शान्ति. 70/2–11।
6. अराजके हि लोकेऽस्मिन् सर्वगे विद्रुते भयात्।
   रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।। मनु. 7/3।
7. अथर्व. 7/50/4।
8. अथर्व. 4/3/2।
9. शतपथ. 1/1/1/4।
10. यजु. 10/24।
11. अथर्व. 13/1/1।
12. अथर्व. 6/87/1।
13. अथर्व. 3/4/2।
14. सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितारौ संविदाने।
   येन संगच्छा उप मा सा शिक्षाच्चारू वदानि पितरः संगतेषु।। अथर्व.7/12/1।
15. ध्रुवाय ते समितिः कल्पताम्। अथर्व. 6/88/3।
16. वरुणैः संविदानः। अथर्व. 3/4/6। ग्रिफिथ, अथर्ववेदभाष्य, भाग 1, पृ.84।
17. ग्रिफिथ, अथर्ववेदभाष्य, भाग 1, पृ.84।
18. विशस्त्वा सर्वा वांछन्तु, मा त्वद् राष्ट्रमधि भ्रशत्। अथर्व. 6/87/1।
19. अस्या सर्वस्या संसदो मामिन्द्र भगिनं कृणु। अथर्व. 7/12/3।
20. प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
   नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्।। अर्थ. पृ. 77।
21. ध्रुवोऽच्युतः प्रमृणीहिंछत्रू यतोऽधरान्पादयस्व।
   सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीर्ध्रुवाय ते समितिः कल्पतामिह।। अथर्व. 6/88/3।
22. शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
   तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्र कर्षणात्।। मनु. 7/112।

23. तैत्ति.ब्रा. 2/2/10/1–2।
24. राजानो भविष्यन्ति–अभिषेचनीयाः। अराजानो भविष्यन्ति राजान्या विशोऽनभिषेचनीयाः। शत.ब्रा. 13/4/2/17।
25. एनम् अभ्यिषिंचन्, ततो वै स देवानां श्रेष्ठोऽभवत्, श्रेष्ठः स्वानां भवति, य एनयाऽभिषिच्यते। शत.ब्रा. 12/8/3/2।
26. राजा वै राजसूयेनेष्ट्वा भवति। सम्राड्. वाजपेयेन। शत.ब्रा. 5/1/1/13।
27. भूतो भूतेषु पय आदधाति सा भूतानामधिपतिबर्भूव।
    तस्य मृत्युश्चरति राजसूयं स राजा राज्यमनु मन्यताभिदार।। अथर्व. 4/8/1।
28. सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितारौ संविदाने। अथर्व. 7/12/1।
29. ब्रह्मगवी सूक्त, अथर्व. 5/19/1–15।
30. नास्मै समितिः कल्पते। अथर्व.5/19/15।
31. (क) अस्मै सौत्रामण्यिा दधृषन्त देवाः। अथर्व. 3/3/2।
    (ख) सौत्रामण्या याजयिष्यति। शत.ब्रा. 12/9/3/3।
32. स्वस्तिदा विशांपतिः। अथर्व. 1/21/1।
33. वितर्तूर्यन्ते मद्यवन्विपश्चितोऽर्यो विप्रो जनानाम्।
    उप क्रमस्व पुरुरुपमा भर वाजं नेदिष्ठयूतये।। अथर्व. 20/85/4।
34. पर्णो राजापिधनं चरूणामूर्जो बलं सह ओजो न आगन्।
    आयुर्जीवेभ्यो विदधद्दीर्धायुत्वाय शतशारदाय।। अथर्व. 18/4/53।
    - पण का वर्णन अथर्ववेद के साथ–साथ मनुस्मृति में भी पाया जाता है। पण प्राचीन वैदिक काल की एक मुद्रा का नाम था जिससे वस्तुओं का आदान–प्रदान होता था। पण से अथर्ववेद के काल का भी निर्धारण किया जा सकता है।

    (क) शुनं नो अस्तु प्रपणे विक्रश्च प्रतिपणः फलिनं मा कृणोतु। अथर्व. 3/15/4।
    (ख) येन धनेन प्रपणं चरामि धनेन देवा धनमिच्छमानः।
    तस्मिन्म इन्द्रो रूचिमा दधातु प्रजापतिः सविता सोमोऽग्निः।। अथर्व. 3/15/15।
    (ग) पणो देयोऽकृष्टस्य षडुत्कृष्टस्य वेतनम्।
    षाण्मासिकस्तथाच्छादो धन्यद्रोणस्तु मासिकः।। मनु. 7/126।
35. (क) येन धनेन प्रपणं चरामि। अथर्व. 3/15/6।
    (ख) आ तू इन्द्र शं राय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुलीनमद्य। अथर्व.
    (ग) स ईशानो धनदा अस्तु महनम्। अथर्व. 3/15/1।
36. (क) रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः। मनु. 7/3।
    (ख) शत.ब्रा. 5/15/14।
37. (क) इदं राष्ट्रम् पिपृहि सौभगाय। अथर्व. 7/35/1।
    (ख) पुत्रमिव पितरौ.....अवथु। यजु.10/34।
38. स्वप्तु माता स्वप्तुपिता स्वप्तुश्वा स्वप्तुविश्पतिः।
39. स्वपन्त्वस्यै ज्ञातयः स्वप्त्वयमभितो जनः। अथर्व. 4/5/6।
    (क) न भूमि वातो अति वाति नाति पश्यति कश्चन।
    स्त्रियश्च सर्वाः स्वापय शुनश्चेन्द्रसखा चरन्।। अथर्व. 4/5/2।
    (ख) जागृतादहमिन्द्रइवरिष्टो अरक्षितः। अथर्व. 4/5/7।
40. (क) वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयम्।
    ससहनाम् पृतन्यतः।। अथर्व. 20/70/20।
    (ख) त्वोतास आवयं वज्रं धना ददीमहि।
    जयेम सं युधि स्पृधः।। अथर्व. 20/70/19।
41. (क) इन्द्रं वृत्राय हन्तवे पुरूहूतमुप ब्रुवे। अथर्व. 20/19/5।
    (ख) वाजेषु सासहिर्भव त्वामीमहे शतक्रतो।
    इन्द्र वृत्राय हन्तवे।। अथर्व. 20/19/6।
42. भरेषु वाजसातये।। अथर्व. 20/19/5।
43. अथर्व.
44. समा रक्षतु स मा गोपायतु तस्मा आत्मनं।
    परि ददे स्वाहा।। अथर्व. 19/71/1।
45. देवाः पितरः पितरो देवाः।
    यो अस्मि सो अस्मि।। अथर्व. 6/123/3।
    अर्थात् देव पितर हैं तथा पितर देव हैं। जो वास्तव में मैं (राजा) हूँ, वही मेरी वास्तविक स्थिति है। कहने का भाव है कि जो पालन करता है वह देव है तथा जो दैवी भाव से युक्त है वह ही पालन करता है।
46. स पचामि स ददामि सयजे स दत्तान्मा यूषम्। अथर्व. 6/123/4।
    अर्थात् वह मैं (राजा) पकाता हूँ, वह मैं (अन्न, शिक्षा,सुरक्षा आदि) देता हूँ, वह मैं यज्ञ करता हूँ,वह मैं दान से विरत नहीं होता हूँ।
47. डॉ.पुखराज जैन, प्रमुख राजनीतिक विचारक, पृ. 42।
48. नाके रान्प्रति तिष्ठ तत्रैतत्प्रति तिष्ठतु।
    विध्कि पूर्तस्य नो राजन्त्स देव सुमनाभव।। अथर्व. 1/123/5।
49. अहोरात्राभ्यां नक्षत्रेभ्यः सूर्यचन्द्रमसाभ्याम्।
    भद्राहमस्मभ्यं राजन्छकधूम त्वं कृधि।। अथर्व. 6/128/3।
50. भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः।
    भद्राहं नो अह्नां रात्री भद्राहमस्तु नः।। अथर्व. 6/128/2।